**ओ३म्**

**‘वेद सृष्टिकर्ता ईश्वर से ही उत्पन्न हुए हैं’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

संसार में दो प्रकार की रचनायें हैं। प्रथम अपौरुषेय कहलाती हैं जिन्हें कि मनुष्य व मनुष्य समूह मिलकर भी निर्मित नहीं कर सकते। दूसरी रचनायें मनुष्यों द्वारा अपनी बुद्धि में निहित ज्ञान व शारीरिक बल व सामर्थ्य का प्रयोग करके की जाती हैं। सूर्य, चन्द्र, पृथिवी एवं पृथिवीस्थ सभी पदार्थ तथा यह ब्रह्माण्ड अपौरुषेय रचना है जिसका अर्थ है कि इसे मनुष्यों द्वारा नहीं बनाया गया है। यह ब्रह्माण्ड किसने बनाया है, तो इसका उत्तर यही हो सकता है कि जो सत्य, चेतन, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक, सर्वातिसूक्ष्म वा सूक्ष्मतम सत्ता हो व ऐसे अनेक वा अनन्त गुणों से युक्त हो उसी से यह संसार बन सकता है। यह गुण व ऐसे अन्य सब गुण एक ही सत्ता में हैं जिनका वर्णन वेद व वैदिक साहित्य में हुआ है। उसे ईश्वर कहते हैं। आर्यसमाज के दूसरे नियम में वेदों के आधार पर वेदों के अर्थां के प्रत्यक्षकर्ता ऋषि दयानन्द ने ईश्वर के स्वरूप का वर्णन करते हुए लिखा है कि ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। अन्यत्र उन्होंने वेदों के आधार पर कहा है कि ईश्वर सभी जीवों का माता, पिता, बन्धु, सखा व मित्र है तथा जीवों के पूर्व जन्म वा पूर्व कल्प में किये पाप व पुण्य कर्मों का सुख व दुःख रूपी फल देने के लिए उसने इस सृष्टि की रचना की है। यह उत्तर बुद्धिगम्य, भ्रमरहित व स्वीकार्य है। इसका इससे भिन्न अन्य कोई उत्तर नहीं हो सकता। तथाकथित नास्तिक वाममार्गी बुद्धिजीवी सृष्टि को स्वतः निर्मित व प्रलय को प्राप्त होने वाली मानते हैं जिसकी समीक्षा कर ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ में सिद्ध किया है कि जड़ पदार्थ किसी नियम के अन्तर्गत संयुक्त होकर स्वयं सृष्टि का निर्माण नहीं कर सकते हैं। यदि ऐसा मान भी ले तो फिर सृष्टि की प्रलय कभी न होगी जो कि होना अनिवार्य है क्योंकि उत्पन्न पदार्थ का नाश अवश्य होता है, यह सिद्धान्त है।

 वेद चार हैं जिनके नाम हैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। वेद संस्कृत भाषा में है। संस्कृत ही समस्त विश्व की आदि व मूल भाषा है। इसी भाषा से संसार की सभी भाषाएं उत्पन्न हुई हैं। वेद संसार के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। विदेशी विद्वान भी इसे स्वीकार करते हैं। वेद संसार की ज्ञान की प्रथम पुस्तकें हैं। वेद से पूर्व संसार में कोई पुस्तक किसी मनुष्य आदि ने नहीं लिखी। वैदिक गणना के अनुसार वेदोत्पत्ति काल 1,96,08,53,117 वर्ष है। वेद किसने रचे, इसका उत्तर परवर्ती वैदिक साहित्य में तो है ही, वेद में भी अनेक स्थानों पर मिलता है। हम यहां यजुर्वेद के 31वें अध्याय का 7वां मन्त्र प्रमाण रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं जो वेदों के उत्पत्तिकर्ता का ज्ञान कराता है। मन्त्र है-‘ओ३म् तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतऽऋचः सामानि जज्ञिरे। छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत।।’ यजुर्वेद भाष्य में ऋषि दयानन्द ने इस मंत्र का शब्दार्थ करते हुए लिखा है कि हे मनुष्यों! तुमको चाहिये कि तुम उस पूर्ण पुरुष को जानो जिस यज्ञस्वरूप व अत्यन्त पूजनीय परमात्मा को सब लोग अपने समस्त पदार्थ समर्पित करते हैं। उस परमात्मा से ऋग्वेद, सामवेद उत्पन्न होते हैं। उस परमात्मा से ही अथर्ववेद उत्पन्न होता है और उसी परमात्मा से यजुर्वेद उत्पन्न होता है। वेदमंत्र में जो जज्ञिरे शब्द आया है यह क्रिया पद है जिसका अर्थ जायन्ते वा उत्पन्न हुए होता है। इससे स्पष्ट होता है कि चारों वेद ईश्वर से ही उत्पन्न हुए हैं जिसके स्वरूप का संक्षिप्त उल्लेख उपर्युक्त मंत्र व उसके शब्दार्थ की पंक्तियों में हुआ है।

 बहुत से लोग इस प्रमाण को शायद स्वीकार न करें। उनका दायित्व है कि वह बतायें कि यदि वेद परमात्मा से उत्पन्न नहीं हुए तो फिर किस चेतन सत्ता से उत्पन्न हुएं? इसका सन्तोषप्रद व निर्भ्रान्त उत्तर किसी के पास नहीं है। वेदों का ज्ञान आदि काल में मनुष्य उत्पन्न नहीं कर सकते थे और ईश्वर के अतिरिक्त अन्य कोई चेतन सत्ता थी नहीं। सच्चाई यह है कि वेद ईश्वर से ही उत्पन्न हुए हैं। वेद ज्ञान को कहते हैं। ज्ञान ज्ञानी का गुण होता है। ज्ञानी में ही ज्ञान रहता है। यह सृष्टि की रचना में इसके रचयिता ने अपने ज्ञान आदि गुणों की पराकाष्ठा की है। आज संसार में जितना ज्ञान है वह या तो वेद में है अथवा वह सब वा अधिकांश इस सृष्टि का अध्ययन करके ही उत्पन्न किया गया है। सृष्टि का समस्त ज्ञान ईश्वर में निहित है। ईश्वर से ही यह ज्ञान सृष्टि में आता है और वेद व सृष्टि से मनुष्यों में। सृष्टिकर्ता का वेदों का ज्ञान नित्य है जो न कभी उसमें उत्पन्न हुआ और न कभी नष्ट होता है। वह सदा से एक समान है और सदा व सर्वत्र, अर्थात् उसके सर्वव्यापक स्वरूप में सर्वत्र, एक समान व एक रस ही रहता है। इस वेद विद्या व सर्वशक्तिमान होने से ही ईश्वर इस सृष्टि की रचना कर सके हैंं। सृष्टि रचना का वर्णन भी वेदों के अनेक मन्त्रों व सूक्तों में उपलब्ध होता है। ऐसा ही वर्णन ऋग्वेद के मण्डल 10, सूक्त 190 के मंत्र 1 से 3 में हुआ है। इन तीनों मंत्रों का विधान ऋषि दयानन्द ने ईश्वरोपासना व सन्ध्या के मन्त्रों में अघमर्षण मन्त्रों के नाम से किया है। इसमें एक स्थान पर यह भी कहा गया है कि ईश्वर ने अपने अपूर्व ज्ञान व पूर्व कल्पों के समान इस सृष्टि की रचना की है। ऐसा वर्णन वेदों के परवर्ती ऋषि परम्परा के विपरीत ग्रन्थों, मध्यकालीन व परवर्ती किसी मत के आचार्य व उनकी पुस्तकों में नहीं मिलता है।

 वेद सृष्टि के आदि ग्रन्थ हैं। विदेशी विद्वान मैक्समूलर भी इस तथ्य को स्वीकार करते हैं। वह यह भी मानते थे कि वेदों का मूल स्वरूप सृष्टि के आदि से लेकर आज तक यथावत् बना रहा है। उसमें किंचित भी परिवर्तन व परिवर्धन नहीं हुआ है। इसके लिए वह वेदाध्यायी पंडितों की प्रशंसा भी करते हैं। एक फ्रासीसी विद्वान ज्यां ले मेई अपनी पुस्तक Hymns from the Rigveda (AC 1975 Edition) में लिखते हैं कि **‘लोगों ने अपनी संस्कृति को सुरक्षित रखने के लिए पत्थरों की इमारतें बनाई, जो प्रतिवर्ष कुछ-न-कुछ जीर्ण होती जाती हैं। उन संस्कृतियों में से बहुतों के केवल खण्डहर रह गये हैं। किन्तु आर्य संस्कृति के प्राचीनतम ऋषियों ने ईश्वरीय ज्ञान वेद को यथाशक्य मूल रूप में सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया। जिस परिश्रम और तपस्या से भारतवर्ष के ऋषियों ने पिछले हजारों वर्षों की परम्परा द्वारा आज तक वेद का यह भण्डार हमारे लिए सुरक्षित रखा है, उससे बड़ा आश्चर्य क्या होगा?’** सृष्टि के आरम्भ से वर्तमान काल तक वेदों के सुरक्षित रहने में एक कारण यह भी है कि उसके आठ प्रकार के विकृति पाठ होते हैं। यह पाठ हैं जटा, माला, शिखा, लेखा, ध्वजो, दण्डो, रथो एवं धन पाठ। शास्त्रों में यह विधान है कि ब्राह्मण किसी लाभ हानि का विचार किये बिना, अर्थात् निष्कारण ही, वेदों का अध्ययन करें व उनकी रक्षा करें। यहां मुख्य बात यह है कि सृष्टि के आदि काल में वेदों की उत्पत्ति के विषय में कोई विवाद नहीं था। वेदों में जो कहा गया है वह मनुष्यों की जानकारी के लिए बताया गया है जिससे उनमें किसी कारण शंका व भ्रम उत्पन्न न हो। यदि इस वेद मन्त्रों में वेदों की उत्पत्ति ईश्वर से होने की चर्चा व उल्लेख न होतो तो भ्रम हो सकता था और परवर्ती मनुष्यों को यह निश्चित करने में कठिनाई होती। वेदों में उल्लेख मिलने से सभी शंकायें निर्मूल हो गई हैं। यह भी विचारणीय है कि जब सृष्टि की आदि में मनुष्यों की अमैथुनी उत्पत्ति हुई तो उन्हें अपने दैनन्दिन कार्य करने के लिए भाषा बोलने व कर्तव्यों के ज्ञान की आवश्यकता थी। उस समय उन्हें भाषा सिखाने व कर्तव्यों का ज्ञान कराने वाला कोई आचार्य व माता-पिता नहीं थे। सृष्टि में इस संसार की रचना करने वाला ईश्वर ही उनका आचार्य, माता व पिता सब कुछ था। वह सर्वज्ञ व सर्वशक्तिमान होने सहित सर्वव्यापक व सर्वान्तर्यामी भी था व है। अतः भाषा व कर्तव्यों का ज्ञान उसी ईश्वर से प्राप्त हो सकता है। इसीलिए वेदों की भाषा और ज्ञान ईश्वर ज्ञान सिद्ध होता है। यदि इस विषय में विस्तार से जानना हो तो पाठकों को ऋषि दयानन्द कृत सत्यार्थप्रकाश और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका आदि ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिये। इन ग्रन्थों के अध्ययन से वेदोत्पत्ति विषयक सभी भ्रम दूर हो जाते हैं, ऐसा हम अनुभव करते हैं।

 वर्तमान काल में संसार में अनेक मिथ्या मत-मतान्तर हैं। मिथ्या इस कारण से कि इनकी ईश्वर व जीवात्मा संबंधी अपूर्ण व मिथ्या मान्यतायें हैं। इन मतों में मनुष्यों के कर्तव्यों का भी भली प्रकार से विधान नहीं है। इन सभी मतों से इनके आचार्यों एवं अनुयायियों के अपने अपने स्वार्थ जुड़े हुए हैं। वह सत्य को जानना व समझना ही नहीं चाहते। उन्होंने एकतरफा मान लिया है कि उनके ग्रन्थों में जो लिखा है वह सत्य है तो भी ठीक है और नहीं है तो भी ठीक है। वह अपने ग्रन्थों के असत्य को भी सत्य ही मानेंगे। सत्यासत्य के निर्णय के लिए न्यायदर्शन की रचना वैदिक साहित्य के अर्न्तगत महर्षि गौतम ने की है। वैदिक ऋषियों और आर्यसमाज के विद्वानों ने इसी आधार पर वैदिक मान्यताओं के सत्यासत्य की परीक्षा कर सत्य को स्वीकार किया है। ऋषि दयानन्द के समान सत्य का आग्रही शायद संसार में आज तक दूसरा उत्पन्न नहीं हुआ है। उन्होंने अपनी सभी मान्यताओं को वैदिक शास्त्रों की सत्यासत्य के निर्णय की प्रक्रिया के अनुसार यथार्थ सिद्ध होने पर ही स्वीकार किया है। अतः वैदिक मान्यतायें ही पूर्णतः सत्य है। ईसादि मनुष्यकृत मत-मतान्तरों की जो मान्यतायें वेदानुकूल व वेदसम्मत हैं वह सत्य हैं अन्यथा असत्य प्रायः हैं और वह असत्य उन मतों व उनके आचार्यों का अपना है। उसके लिए परमात्मा व वेद दोषी नहीं है।

 वेदों की महत्ता इस बात से भी सिद्ध है कि यह सृष्टि के आदि काल में उत्पन्न हुए। वेदों में ईश्वर, जीवात्मा व प्रकृति का जो ज्ञान विज्ञान सम्मत प्रकाश हुआ है उससे यह ईश्वरीय ज्ञान सिद्ध होते हैं। देश से बाहर व भीतर विगत चार हजार वर्षों में जितने मत-मतान्तर उत्पन्न हुए हैं उनमें ईश्वर, जीव व सृष्टि विषयक विचार वेदों की दृष्टि से बहुत ही निम्न कोटि के, अपूर्ण व अशुद्ध हैं। उन्हें तो यह भी ज्ञात नहीं कि यह सृष्टि ईश्वर ने कब, क्यों व किस लिए बनाई? मनुष्यों से इतर पशुओं आदि की रचना का कारण क्या है। प्रलय कब व क्यों होगा? मत-मतान्तरों के ग्रन्थों में स्त्री व पुरुषों को समान अधिकार न देकर महिलाओं को निम्न व पुरुषों को श्रेष्ठ व अधिक महत्वपूर्ण माना गया है। आज भी अनेक मतों में स्त्रियों को उनके धार्मिक स्थलों में जाने की अनुमति नहीं है। इसके लिए संघर्ष चल रहे हैं। इससे ऐसे सभी मत ज्ञान विज्ञान के विपरीत अनुपयोगी व मनुष्यों के लिए लाभदायक होने के स्थान पर हानिकारक प्रतीत होते हैं। यह मत कर्म फल सिद्धान्त तक को जानते नहीं हैं और इनके ईश्वर एक देशी होने के कारण सभी प्राणियों के कर्मों के साक्षी न होने से सत्य न्याय भी नहीं कर सकते। इसी कारण इन मतों में पापकर्मी मनुष्यों की संख्या अधिक पायी जाती है। ऐसे अनेक कारणों से वैदिक मत से इतर सभी मत आज अप्रसांगिक हैं। ईश्वर व उसका ज्ञान वेद ही मनुष्य के लिए सर्वाधिक हितकारी है। ईश्वर व जीवात्मा का सत्य स्वरूप वेद में वर्णित है और जो वेद में वर्णित है वह सभी पदार्थ व विधान वैसे ही सृष्टि में घटित हो रहे हैं। वेद ईश्वर रचित हैं, अतः सबको वेद पढ़ने चाहिये और वेदाचारण ही सब मनुष्यों का धर्म है। इसी के साथ इस चर्चा को समाप्त करते हैं। ओ३म् शम्।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**